आधुनिक विश्व में राष्ट्रवाद और पहचान की राजनीति

तरुण परिहार

सहायक आचार्य, राजनीति विज्ञान

सारांश

आधुनिक विश्व में राष्ट्रवाद और पहचान की राजनीति के उभार ने वैश्विक और राष्ट्रीय राजनीति में महत्वपूर्ण प्रभाव डाला है। इस शोध में राष्ट्रवाद की परिभाषा, इसके विविध स्वरूपों (सांस्कृतिक, धार्मिक, और आर्थिक), और पहचान की राजनीति के साथ इसके अंतर्संबंध का अध्ययन किया गया है। 21वीं सदी में, वैश्वीकरण के प्रभाव और तकनीकी प्रगति के बावजूद, राष्ट्रवाद ने समाज और राजनीति में मजबूत पकड़ बनाई है। ब्रेक्जिट, अमेरिका में "अमेरिका फर्स्ट" नीति, और भारत में धार्मिक राष्ट्रवाद जैसे उदाहरण बताते हैं कि पहचान की राजनीति ने राष्ट्रवाद को एक नई दिशा दी है।

यह शोध सामाजिक और सांस्कृतिक पहचान (जैसे जाति, धर्म, भाषा) के राष्ट्रवाद में योगदान का विश्लेषण करता है और यह समझाने का प्रयास करता है कि पहचान आधारित राजनीति कैसे सामाजिक ध्रुवीकरण और बहुसंस्कृतिवाद के टकराव को जन्म देती है। शोध में यह भी चर्चा की गई है कि राष्ट्रवाद किस प्रकार वैश्विक राजनीति में बहुपक्षीय सहयोग को चुनौती देता है।

इस अध्ययन का उद्देश्य राष्ट्रवाद के बदलते स्वरूप को समझना और पहचान आधारित राजनीति के माध्यम से समाज और सरकारों पर इसके प्रभाव का आकलन करना है। यह निष्कर्ष देता है कि समावेशी नीतियाँ और बहुसंस्कृतिवाद का प्रोत्साहन इन चुनौतियों का समाधान हो सकता है।

मुख्य शब्द: राष्ट्रवाद, पहचान की राजनीति, सांस्कृतिक राष्ट्रवाद, धार्मिक राष्ट्रवाद, वैश्वीकरण, बहुसंस्कृतिवाद, सामाजिक ध्रुवीकरण, ब्रेक्जिट, "अमेरिका फर्स्ट"नीति, समावेशी नीतियाँ

1.1 प्रस्तावना

राष्ट्रवाद और पहचान की राजनीति ने आधुनिक वैश्विक राजनीति में महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त किया है। यह दोनों अवधारणाएँ समाज और राजनीति के परिप्रेक्ष्य में विभिन्न बदलावों और चुनौतियों का कारण बनी हैं। 21वीं सदी में वैश्वीकरण और प्रौद्योगिकी के प्रभाव के बावजूद, राष्ट्रवाद ने विश्व के कई हिस्सों में अपनी सशक्त उपस्थिति दर्ज कराई है। पहचान की राजनीति, जो जाति, धर्म, भाषा, और सांस्कृतिक पहचान पर आधारित होती है, राष्ट्रवाद के साथ घनिष्ठ रूप से जुड़ी है। यह राजनीति सामाजिक ध्रुवीकरण, कट्टरपंथी प्रवृत्तियों और राष्ट्रों के बीच संघर्ष को जन्म देती है। उदाहरण स्वरूप, ब्रेक्जिट, अमेरिका में "अमेरिका फर्स्ट" नीति, और भारत में धार्मिक राष्ट्रवाद जैसे घटनाक्रमों ने इस बात को सिद्ध किया है कि पहचान आधारित राजनीति ने राष्ट्रवाद को एक नई दिशा दी है (Kapoor, 2020; Sharma & Gupta, 2021)। इस शोध का

उद्देश्य राष्ट्रवाद के बदलते स्वरूप को समझना और पहचान आधारित राजनीति के प्रभावों का विश्लेषण करना है।

राष्ट्रवाद की परिभाषा और प्रकार

राष्ट्रवाद एक राजनीतिक विचारधारा है जिसमें राष्ट्रीय पहचान, एकता, और स्वतंत्रता की भावना प्रमुख होती है। यह राष्ट्रीय हितों को सर्वोपरि मानते हुए किसी राष्ट्र के राजनीतिक, सांस्कृतिक, और सामाजिक अधिकारों की रक्षा करने की आवश्यकता पर बल देता है (Chakraborty, 2020)। राष्ट्रवाद का सामान्य अर्थ है कि प्रत्येक राष्ट्र को अपनी स्वतंत्रता, सांस्कृतिक पहचान, और राजनीतिक व्यवस्था का अधिकार होना चाहिए। यह विचारधारा मूल रूप से राष्ट्रों को एक एकीकृत समुदाय के रूप में देखती है, जो अपने साझा इतिहास, परंपराओं, और सांस्कृतिक धरोहरों के माध्यम से एकजुट होता है (Singh, 2020)।

सांस्कृतिक राष्ट्रवाद

सांस्कृतिक राष्ट्रवाद वह रूप है जिसमें एक राष्ट्र की सांस्कृतिक पहचान और परंपराओं को प्राथमिकता दी जाती है। इस प्रकार का राष्ट्रवाद विशेष रूप से राष्ट्रीय संस्कृति, भाषा, और परंपराओं को संरक्षित करने के उद्देश्य से उभरता है। सांस्कृतिक राष्ट्रवाद में समाज की परंपराएँ और सांस्कृतिक विरासत महत्वपूर्ण होते हैं, और इसे राष्ट्रीय पहचान के रूप में प्रस्तुत किया जाता है (Patel & Sharma, 2021)। उदाहरण के लिए, भारत में सांस्कृतिक राष्ट्रवाद ने हिंदू संस्कृति और परंपराओं को राष्ट्रीय पहचान का हिस्सा बना दिया है। यह एक ऐसे राष्ट्रवाद का रूप है जो एक विशिष्ट सांस्कृतिक पहचान के माध्यम से राष्ट्र के एकीकरण को बढ़ावा देता है (Mishra, 2021)।

धार्मिक राष्ट्रवाद

धार्मिक राष्ट्रवाद एक ऐसे राष्ट्रवाद का रूप है जो धार्मिक पहचान पर आधारित होता है। इस प्रकार का राष्ट्रवाद विशेष रूप से धर्म को राष्ट्रीय पहचान और एकता का आधार मानता है। धार्मिक राष्ट्रवाद में धार्मिक समूहों का महत्व बढ़ जाता है, और इसे राजनीति में भी महत्वपूर्ण स्थान मिलता है (Sharma & Gupta, 2021)। भारत में धार्मिक राष्ट्रवाद का उदाहरण 'हिंदू राष्ट्र' की अवधारणा के रूप में देखा जा सकता है, जहां हिंदू धर्म को राष्ट्रीय पहचान से जोड़ा जाता है। इस प्रकार के राष्ट्रवाद में धार्मिक विविधताओं का सम्मान कम होता है, और यह समाज में ध्रुवीकरण और संघर्ष का कारण बन सकता है (Patel & Singh, 2021)।

आर्थिक राष्ट्रवाद

आर्थिक राष्ट्रवाद में राष्ट्र की आर्थिक स्वतंत्रता और स्वावलंबन पर जोर दिया जाता है। इसमें यह मान्यता होती है कि राष्ट्र को अपनी आर्थिक नीतियों और संसाधनों पर नियंत्रण रखना चाहिए, और वैश्विक बाज़ार में विदेशी प्रभाव से बचने के लिए राष्ट्र को अपनी आर्थ

िक नीतियों को स्वायत्त बनाना चाहिए (Kumar, 2019)। आर्थिक राष्ट्रवाद का उद्देश्य अपने देश के आर्थिक हितों की रक्षा करना है, खासकर जब वैश्वीकरण के दौर में विदेशी कंपनियाँ और आर्थिक नीतियाँ राष्ट्रीय सीमाओं को चुनौती देती हैं। यह राष्ट्रवादी दृष्टिकोण व्यापार, निवेश, और अन्य आर्थिक गतिविधियों पर नियंत्रण के लिए सरकारी हस्तक्षेप की आवश्यकता को महसूस करता है (Chaudhary, 2019)। अमेरिका की "अमेरिका फर्स्ट" नीति एक उदाहरण है, जिसमें आर्थिक राष्ट्रवाद का प्रमुख रूप से पालन किया गया था, जिसमें राष्ट्रीय उद्योगों को संरक्षण देने और वैश्विक व्यापार समझौतों से बाहर निकलने की बात की गई थी।

राष्ट्रवाद और पहचान की राजनीति के विविध रूपों का आज के वैश्विक राजनीति पर गहरा प्रभाव है। सांस्कृतिक, धार्मिक और आर्थिक राष्ट्रवाद के विभिन्न प्रकार राष्ट्रों के आंतरिक और बाहरी राजनीति पर प्रभाव डालते हैं। पहचान की राजनीति, विशेष रूप से धार्मिक और सांस्कृतिक पहचान आधारित राजनीति, ने राष्ट्रवाद को नए आयाम दिए हैं और यह समाज में विभाजन और संघर्ष का कारण बन सकती है। यह शोध इन विभिन्न रूपों का विश्लेषण कर रहा है, ताकि हम समझ सकें कि किस प्रकार ये तत्व समकालीन राजनीति को आकार दे रहे हैं।

1.2 पहचान की राजनीति और राष्ट्रवाद का अंतर्संबंध

पहचान की राजनीति की परिभाषा

पहचान की राजनीति एक राजनीतिक दृष्टिकोण है जो व्यक्तियों और समूहों की सामाजिक पहचान, जैसे जाति, धर्म, भाषा, लिंग, और संस्कृति, के आधार पर राजनीतिक और सामाजिक गतिविदियों को संचालित करती है। यह राजनीति विशेष रूप से उन समूहों के अधिकारों और मान्यताओं को प्राथमिकता देती है, जो पारंपरिक रूप से समाज में हाशिए पर रहे हैं। पहचान की राजनीति का मुख्य उद्देश्य उन समूहों के लिए समान अधिकार और सम्मान सुनिश्चित करना है, जिनकी सांस्कृतिक और सामाजिक पहचान को मुख्यधारा के समाज द्वारा अक्सर नकारा गया है (Chakraborty, 2020)। यह राजनीतिक अवधारणा पहचान को एक सामूहिक और सांस्कृतिक शक्ति के रूप में देखती है, जो व्यक्ति और समाज के बीच संबंधों को प्रभावित करती है।

पहचान और राष्ट्रवाद के बीच संबंध

राष्ट्रवाद और पहचान की राजनीति के बीच गहरा संबंध है। राष्ट्रवाद किसी राष्ट्र की राष्ट्रीय एकता, संस्कृति, और स्वतंत्रता पर आधारित होता है, जबकि पहचान की राजनीति सामाजिक और सांस्कृतिक समूहों के अधिकारों और पहचान की रक्षा करती है। जब पहचान की राजनीति को राष्ट्रवाद से जोड़कर देखा जाता है, तो यह इस तथ्य को स्पष्ट करता है कि एक राष्ट्र की सांस्कृतिक, धार्मिक, और भाषाई विविधता के बावजूद, इसे एक एकीकृत पहचान में समाहित करने की आवश्यकता होती है (Patel & Sharma, 2021)।

उदाहरण स्वरूप, भारत में हिंदू राष्ट्रवाद की अवधारणा धार्मिक पहचान को राष्ट्रीय पहचान का एक अभिन्न हिस्सा मानती है। यहां, राष्ट्रवाद केवल एक राजनीतिक विचारधारा नहीं है, बल्कि यह सांस्कृतिक और धार्मिक पहचान का भी प्रतिनिधित्व करता है। इसी प्रकार, जब राष्ट्रवाद और पहचान की राजनीति का मिश्रण होता है, तो यह समाज में न केवल राष्ट्रीय एकता का निर्माण करता है, बल्कि यह विभिन्न पहचान समूहों के संघर्षों और आकांक्षाओं को भी राजनीतिक रूप से प्रस्तुत करता है (Sharma & Gupta, 2021)।

जाति, धर्म, भाषा और राष्ट्रीय पहचान

जाति, धर्म, भाषा और अन्य सांस्कृतिक पहचान तत्व राष्ट्रवाद की राजनीति में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। ये तत्व राष्ट्र के भीतर विविधताएँ उत्पन्न करते हैं, लेकिन साथ ही, इन्हें एकजुट करने की कोशिश की जाती है। सांस्कृतिक राष्ट्रवाद में जाति और धर्म को राष्ट्रीय पहचान का अभिन्न हिस्सा माना जाता है, जैसे भारत में हिंदू धर्म को राष्ट्रीय पहचान के साथ जोड़ने की प्रवृत्तियाँ हैं। इससे राष्ट्र की विविधता और समरसता को लेकर एक चुनौती उत्पन्न होती है, क्योंकि यह उन समुदायों के लिए अलगाव की भावना पैदा कर सकता है जिनकी पहचान मुख्यधारा की राष्ट्रवादी परिभाषा से मेल नहीं खाती। उदाहरण के तौर पर, भारत में मुसलमानों और अन्य अल्पसंख्यकों को राष्ट्रीय पहचान से बाहर किया जाता है, जब राष्ट्रवाद को धर्म के आधार पर परिभाषित किया जाता है (Mishra, 2021)। इसी प्रकार, भाषा भी एक महत्वपूर्ण पहचान का तत्व है, और यह भाषा आधारित पहचान को मजबूत करने के लिए राजनीतिक उपकरण के रूप में काम करता है, जैसे हिंदी को राष्ट्रीय भाषा के रूप में बढ़ावा देना या क्षेत्रीय भाषाओं की पहचान का संघर्ष।

वैश्वीकरण और राष्ट्रवाद

वैश्वीकरण के प्रभाव ने राष्ट्रवाद के रूप और इसके सामाजिक और सांस्कृतिक आयामों को बदल दिया है। जहां एक ओर वैश्वीकरण ने राष्ट्रों को आर्थिक और सांस्कृतिक दृष्टिकोण से एक दूसरे से जोड़ा है, वहीं दूसरी ओर इसने राष्ट्रीय पहचान के संरक्षण के लिए एक नई चुनौती भी प्रस्तुत की है। वैश्वीकरण के कारण देशों के बीच सूचना, पूंजी, और संसाधनों का आदान-प्रदान तेजी से बढ़ा है, जिससे राष्ट्रोंको अपनी सांस्कृतिक और राजनीतिक पहचान को बचाने के लिए संघर्ष करना पड़ा है (Kapoor & Sinha, 2020)।

वैश्वीकरण का राष्ट्रवाद पर प्रभाव

वैश्वीकरण ने राष्ट्रवाद को एक नया आयाम दिया है, जहाँ अब यह केवल राष्ट्रीय हितों की रक्षा तक सीमित नहीं रहा। वैश्वीकरण के दौर में, जब एक देश की आर्थिक और सांस्कृतिक पहचान अन्य देशों से जुड़ी होती है, तब राष्ट्रवाद को अपनी पहचान और स्वायत्तता को बनाए रखने के लिए संघर्ष करना पड़ता है (Kumar, 2019)। उदाहरण स्वरूप, यूरोपीय संघ में ब्रेक्जिट की घटना यह दर्शाती है कि वैश्वीकरण के प्रभाव से न केवल आर्थिक, बल्कि राजनीतिक और सांस्कृतिक मुद्दों पर भी राष्ट्रीय पहचान की रक्षा की आवश्यकता

महसूस की जाती है। ब्रेक्जिट जैसे कदम राष्ट्रवाद के उस रूप को व्यक्त करते हैं, जहां राष्ट्रीय एकता और स्वायत्तता को वैश्विक एकीकरण से ऊपर रखा जाता है।

राष्ट्रीय पहचान को खतरा और संरक्षण की प्रवृत्तियाँ

वैश्वीकरण के प्रभाव में, राष्ट्रीय पहचान पर खतरा उत्पन्न हो सकता है क्योंकि वैश्वीकरण के कारण एक राष्ट्र की संस्कृति और पहचान अन्य देशों के प्रभाव में आ सकती है। इसके परिणामस्वरूप, राष्ट्रवाद को अपनी संस्कृति, भाषा, और परंपराओं को बचाने के लिए एक रक्षात्मक रूप धारण करना पड़ता है (Singh, 2020)। यह प्रवृत्ति विशेष रूप से सांस्कृतिक राष्ट्रवाद में अधिक प्रकट होती है, जहां राष्ट्रीय पहचान के संकट को दूर करने के लिए सांस्कृतिक संरक्षण की आवश्यकता महसूस की जाती है। भारत और अमेरिका जैसे देशों में यह देखा गया है, जहां धार्मिक और सांस्कृतिक पहचान को प्रमुखता दी जाती है, और बाहरी प्रभावों को नकारा जाता है। इस संदर्भ में, राष्ट्रवाद के संरक्षण के लिए शुद्धतावादी दृष्टिकोण अपनाया जाता है, जो समावेशीता की बजाय विभाजन और ध्रुवीकरण का कारण बन सकता है (Sharma & Gupta, 2021)।

राष्ट्रवाद और पहचान की राजनीति एक दूसरे से गहरे रूप में जुड़े हुए हैं। जहां राष्ट्रवाद राष्ट्रीय एकता और स्वतंत्रता की भावना से प्रेरित होता है, वहीं पहचान की राजनीति विभिन्न सामाजिक और सांस्कृतिक समूहों की विशिष्टताओं को सम्मान देने की कोशिश करती है। वैश्वीकरण ने राष्ट्रवाद को नए रूप में ढाला है, जिसमें राष्ट्रीय पहचान और स्वायत्तता की रक्षा के साथ-साथ बाहरी सांस्कृतिक प्रभावों का सामना करना पड़ता है। इसलिए, राष्ट्रवाद और पहचान की राजनीति के संबंध को समझना आवश्यक है, ताकि हम सामाजिक समरसता और राष्ट्रीय एकता को बढ़ावा देने के साथ-साथ विभिन्न पहचान समूहों की स्वीकृति और समानता सुनिश्चित कर सकें।

1.3 पहचान आधारित राजनीति और सामाजिक ध्रुवीकरण

सामाजिक ध्रुवीकरण और पहचान की राजनीति

सामाजिक ध्रुवीकरण एक ऐसी स्थिति है जिसमें समाज के विभिन्न समूह एक-दूसरे से अलग हो जाते हैं और उनकी विचारधाराएँ, सामाजिक पहचान, या संस्कृति के आधार पर टकराव उत्पन्न होते हैं। पहचान आधारित राजनीति इस ध्रुवीकरण का एक महत्वपूर्ण कारण बनती है। जब राजनीतिक नेता और दल जाति, धर्म, भाषा या अन्य सांस्कृतिक पहचानों को आधार बना कर अपना राजनीतिक प्रचार करते हैं, तो वे समाज के विभिन्न हिस्सों को एक-दूसरे से अलग करने का काम करते हैं (Chakraborty, 2020)। पहचान की राजनीति न केवल समाज में विभाजन उत्पन्न करती है, बल्कि यह सामूहिक एकता को भी चुनौती देती है, क्योंकि प्रत्येक समूह अपनी पहचान को सबसे महत्वपूर्ण मानने लगता है और दूसरों को नकारता है।

उदाहरण के तौर पर, भारत में हिंदू धर्म को लेकर धार्मिक राष्ट्रवाद की धारा मजबूत हो रही है, जो समाज के अन्य धर्मों को पीछे छोड़ने का प्रयास करती है (Sharma & Gupta, 2021)। इस तरह की राजनीति समाज में एक गहरे ध्रुवीकरण को जन्म देती है, क्योंकि इससे समाज के विभिन्न धार्मिक और सांस्कृतिक समूहों के बीच तनाव बढ़ता है। यही स्थिति अन्य देशों में भी देखी जा सकती है, जहां पहचान आधारित राजनीति ने सामाजिक संघर्षों और असहमति को तेज किया है। पहचान आधारित राजनीति, जो किसी विशेष समूह की सत्ता और प्रभाव को बढ़ावा देती है, अंततः सामाजिक ताने-बाने को कमजोर कर देती है।

बहुसंस्कृतिवाद और उसके विरोध की चुनौतियाँ

बहुसंस्कृतिवाद का सिद्धांत समाज में विभिन्न संस्कृतियों, धर्मों, और भाषाओं के बीच समानता और सहिष्णुता का समर्थन करता है। यह विचारधारा मानती है कि प्रत्येक संस्कृति और पहचान को सम्मान और संरक्षण मिलना चाहिए, और एक समान समाज का निर्माण तब संभव है जब सभी समूहों को अपनी पहचान और संस्कृति बनाए रखने का अधिकार मिले (Patel & Sharma, 2021)।

हालांकि, बहुसंस्कृतिवाद को विभिन्न विरोधों का सामना करना पड़ता है, खासकर जब यह सामाजिक और राजनीतिक संरचनाओं को चुनौती देता है। कई राष्ट्रों में, बहुसंस्कृतिवाद को एक बिखराव या विघटन की प्रक्रिया के रूप में देखा जाता है, क्योंकि यह राष्ट्रीय एकता को खतरे में डालता है। ऐसे राष्ट्रों में जहां पहचान आधारित राजनीति मजबूत होती है, बहुसंस्कृतिवाद के विचारों का विरोध किया जाता है और इसे "देशद्रोह" के रूप में पेश किया जाता है। उदाहरण के तौर पर, ब्रिटेन में ब्रेक्जिट आंदोलन और अमेरिका में "अमेरिका फर्स्ट" नीति ने वैश्विकता और बहुसंस्कृतिवाद के खिलाफ खड़ा हो कर राष्ट्रीय पहचान को प्राथमिकता दी। इन आंदोलनों ने बहुसंस्कृतिवाद और वैश्वीकरण के विचार को नकारते हुए एक संकीर्ण और असहमति से भरे राष्ट्रवाद की ओर इशारा किया है।

वैश्विक उदाहरण: ब्रेक्जिट और "अमेरिका फर्स्ट" नीति

ब्रेक्जिट और "अमेरिका फर्स्ट" नीति जैसे वैश्विक उदाहरण राष्ट्रवाद और पहचान की राजनीति के प्रभाव को दर्शाते हैं। ये उदाहरण यह दिखाते हैं कि किस प्रकार पहचान आधारित राजनीति ने राष्ट्रीय स्तर पर ध्रुवीकरण और विरोध को जन्म दिया है, साथ ही वैश्विक सहयोग के लिए एक खतरे के रूप में उभरी है।

ब्रेक्जिट और ब्रिटिश राष्ट्रवाद

ब्रेक्जिट, यानी ब्रिटेन का यूरोपीय संघ से बाहर निकलना, ब्रिटिश राष्ट्रवाद के पुनरुत्थान का प्रतीक बन गया। यह आंदोलन एक बड़े हिस्से में ब्रिटिश पहचान और स्वायत्तता की रक्षा करने के लिए था। इस आंदोलन ने यह सिद्ध करने की कोशिश की कि ब्रिटेन की राष्ट्रीय पहचान यूरोपीय संघ के सदस्य बनने के कारण कमजोर हो रही थी (Kumar, 2019)। ब्रेक्जिट का मुख्य कारण था वैश्वीकरण के परिणामस्वरूप यूरोपीय संघ द्वारा निर्धारित नियमों और नीतियों का ब्रिटिश पहचान और स्वतंत्रता पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ना। यहां पर

पहचान आधारित राजनीति ने ब्रिटेन के भीतर समाज को दो खेमों में विभाजित किया - एक जो यूरोपीय संघ के साथ बने रहना चाहता था और दूसरा जो अपनी राष्ट्रीय पहचान और स्वायत्तता को बढ़ावा देने के लिए यूरोपीय संघ से बाहर निकलने की बात कर रहा था। इस प्रकार, ब्रेक्जिट ने न केवल ब्रिटिश राष्ट्रवाद को मजबूत किया, बल्कि यह सामाजिक ध्रुवीकरण और राजनीतिक असहमति का कारण भी बना (Patel & Sharma, 2021)।

"अमेरिका फर्स्ट" नीति और अमेरिकी राष्ट्रवाद

"अमेरिका फर्स्ट" नीति, जिसे अमेरिका के पूर्व राष्ट्रपति डोनाल्ड ट्रंप ने अपनाया था, अमेरिकी राष्ट्रवाद को एक नया आयाम देने का प्रयास करती है। इस नीति के तहत, ट्रंप प्रशासन ने अमेरिका के राष्ट्रीय हितों को प्राथमिकता दी और वैश्विक सहयोग को नकारते हुए अमेरिकी पहचान और संप्रभुता की रक्षा की (Taylor, 2018)। इस नीति ने वैश्विक बहुपक्षीयता को कमजोर किया और अमेरिका को अन्य देशों से अलग खड़ा कर दिया। यह नीति पहचान आधारित राजनीति को मुख्यधारा में लाने का प्रयास करती है, जिसमें अमेरिकी संस्कृति और पहचान को सर्वोपरि माना गया है। इसके परिणामस्वरूप, अमेरिका में भी समाज में गहरे विभाजन और ध्रुवीकरण की स्थिति उत्पन्न हुई, जिससे बहुसंस्कृतिवाद और वैश्वीकरण के विचारों का विरोध हुआ।

ब्रेक्जिट और "अमेरिका फर्स्ट" जैसी नीतियाँ यह स्पष्ट करती हैं कि पहचान आधारित राजनीति किस प्रकार सामाजिक ध्रुवीकरण और राष्ट्रीय एकता की चुनौती बन सकती है। इन वैश्विक उदाहरणों से यह भी पता चलता है कि राष्ट्रवाद और पहचान की राजनीति समाज के भीतर तनाव और विभाजन का कारण बन सकती है, लेकिन इसके बावजूद, यह राष्ट्रों के भीतर एक सशक्त और परिभाषित राष्ट्रीय पहचान की भावना को जन्म देती है। हालांकि, इस प्रकार की राजनीति का समाज में सकारात्मक और नकारात्मक दोनों प्रभाव हो सकता है, इसलिए समावेशी नीतियों और सामाजिक एकता को बढ़ावा देने के लिए लोकतांत्रिक दृष्टिकोण की आवश्यकता है।

1.4 भारत में धार्मिक राष्ट्रवाद

भारत में पहचान आधारित राजनीति का उभार

भारत में पहचान आधारित राजनीति, विशेष रूप से धार्मिक राष्ट्रवाद, एक महत्वपूर्ण राजनीतिक प्रवृत्ति के रूप में उभरी है। यह राजनीति समाज के विभिन्न धार्मिक और सांस्कृतिक समूहों की पहचान पर आधारित है, जो राष्ट्रवाद के विचार को उस विशेष पहचान के संदर्भ में परिभाषित करती है। 21वीं सदी में भारत में यह पहचान आधारित राजनीति विशेष रूप से हिंदू धर्म के संदर्भ में उभरी है, जिसे कुछ राजनीतिक दलों ने अपने चुनावी एजेंडे के रूप में पेश किया। धार्मिक राष्ट्रवाद का उदय भारत में सामाजिक और राजनीतिक ध्रुवीकरण का कारण बन रहा है, जहाँ धार्मिक पहचान को राष्ट्रीय पहचान से जोड़ा जा रहा है (Sharma &

Mehta, 2021)। इस राजनीति के तहत, हिंदू धर्म और संस्कृति को भारतीय राष्ट्रवाद के मूल तत्व के रूप में प्रस्तुत किया जाता है, जिससे अन्य धार्मिक समूहों, जैसे मुसलमानों और ईसाइयों, को हाशिये पर डाला जाता है।

धार्मिक राष्ट्रवाद ने भारतीय राजनीति में गहरी सामाजिक ध्रुवीकरण की स्थिति पैदा की है। यह राजनीति न केवल धार्मिक पहचान को बढ़ावा देती है, बल्कि अन्य धर्मों और सांस्कृतिक पहचान वाले समुदायों को खतरे में डालती है। इस प्रकार, भारत में धार्मिक राष्ट्रवाद ने भारतीय समाज की विविधता और बहुलतावादी संरचना को चुनौती दी है (Patel & Singh, 2021)।

धार्मिक राष्ट्रवाद और उसकी राजनीतिक परिभाषा

धार्मिक राष्ट्रवाद को राजनीतिक दृष्टिकोण से समझने के लिए यह आवश्यक है कि हम इसे राष्ट्रवाद के सामान्य सिद्धांत के साथ जोड़कर देखें। सामान्यतः राष्ट्रवाद एक राष्ट्रीय एकता और पहचान के विचार पर आधारित होता है, जबकि धार्मिक राष्ट्रवाद इस विचार को धार्मिक पहचान के संदर्भ में प्रस्तुत करता है। भारतीय संदर्भ में, यह धार्मिक राष्ट्रवाद हिंदू धर्म के मूल्यों और संस्कृति को राष्ट्रीय पहचान का हिस्सा बनाता है, जिससे अन्य धर्मों को बाहर करने की कोशिश की जाती है। धार्मिक राष्ट्रवाद का यह स्वरूप भारतीय राजनीति में एक शक्तिशाली मुद्दा बन गया है, जो विशेष रूप से भारतीय जनता पार्टी (BJP) जैसी पार्टी के द्वारा बढ़ावा दिया जाता है (Kumar, 2020)।

धार्मिक राष्ट्रवाद की राजनीतिक परिभाषा में यह समझाया जाता है कि राज्य की शक्ति और संसाधनों को एक विशेष धार्मिक समूह के हितों में कैसे मोड़ा जा सकता है। यह प्रक्रिया उस धार्मिक समुदाय को शक्ति और प्रतिष्ठा प्रदान करती है, जो राज्य के राजनीतिक एजेंडे को नियंत्रित करता है। इस प्रकार, धार्मिक राष्ट्रवाद राष्ट्रीय राजनीति में धार्मिक पहचान की प्रमुखता को स्वीकार करता है और इसे समाज के अन्य हिस्सों पर थोपता है।

राष्ट्रवाद और बहुपक्षीय सहयोग

वैश्वीकरण और बहुपक्षीय सहयोग के युग में राष्ट्रवाद एक महत्वपूर्ण चुनौती उत्पन्न करता है। जब राष्ट्रवाद को धर्म, संस्कृति, या जाति के संदर्भ में प्रस्तुत किया जाता है, तो यह अंतरराष्ट्रीय सहयोग और समन्वय को बाधित कर सकता है। धार्मिक राष्ट्रवाद विशेष रूप से अंतरराष्ट्रीय संबंधों में टकराव उत्पन्न कर सकता है, क्योंकि यह एक राष्ट्र के अंदर धार्मिक पहचान को सर्वोपरि मानते हुए वैश्विक सहमति और सहयोग की प्रक्रिया में बाधाएँ उत्पन्न करता है (Chaudhary, 2020)।

राष्ट्रवाद और अंतरराष्ट्रीय सहयोग के बीच टकराव

धार्मिक राष्ट्रवाद और अंतरराष्ट्रीय सहयोग के बीच टकराव का स्पष्ट उदाहरण भारत और पाकिस्तान के संबंधों में देखा जा सकता है। दोनों देशों के राष्ट्रवादी दृष्टिकोण अपने-अपने धार्मिक और सांस्कृतिक

पहचान पर आधारित हैं, जो अंतरराष्ट्रीय सहयोग और संवाद की प्रक्रिया में कठिनाई उत्पन्न करता है। इसी तरह, जब धार्मिक राष्ट्रवाद वैश्विक राजनीति के संदर्भ में पेश किया जाता है, तो यह दूसरे देशों के साथ समन्वय की प्रक्रिया को जटिल बना सकता है, क्योंकि विभिन्न राष्ट्रों के बीच पहचान और मूल्य की अंतर-बाहुलता होती है। उदाहरण के तौर पर, भारत और पाकिस्तान के अलावा, यूरोपीय संघ में भी धार्मिक और सांस्कृतिक पहचान को लेकर राजनीति में संघर्ष देखे गए हैं, जैसे ब्रेक्जिट आंदोलन में ब्रिटिश राष्ट्रीय पहचान को लेकर विवाद (Taylor, 2018)।

वैश्विक राजनीति में राष्ट्रवाद का स्थान

वैश्विक राजनीति में, राष्ट्रवाद और अंतरराष्ट्रीय सहयोग के बीच टकराव के बावजूद, राष्ट्रवाद का स्थान अभी भी मजबूत है। राष्ट्रवादी विचारधाराएँ विभिन्न देशों में अपनी ताकत बनाए हुए हैं, विशेष रूप से उन देशों में जहां पहचान की राजनीति और सांस्कृतिक संघर्ष प्रमुख हैं। वैश्वीकरण के बावजूद, यह राष्ट्रवादी आंदोलन कई देशों में उभर कर सामने आए हैं, जैसे अमेरिका में "अमेरिका फर्स्ट" नीति और ब्रिटेन में ब्रेक्जिट आंदोलन, जो वैश्विक राजनीति में राष्ट्रवाद की भूमिका को फिर से स्थापित करते हैं (Patel & Sharma, 2021)।

निष्कर्षतः, धार्मिक राष्ट्रवाद का वैश्विक राजनीति में स्थान इस तथ्य को उजागर करता है कि भले ही वैश्विक सहयोग के प्रयास किए जा रहे हों, राष्ट्रवादी विचारधाराएँ और पहचान आधारित राजनीति अपने प्रभाव को बनाए रखती हैं। धार्मिक राष्ट्रवाद का प्रभाव सिर्फ घरेलू राजनीति तक ही सीमित नहीं रहता, बल्कि यह अंतरराष्ट्रीय राजनीति को भी प्रभावित करता है, जिससे वैश्विक सहयोग और समन्वय में चुनौतियाँ उत्पन्न होती हैं।

1.5 समावेशी नीतियाँ और बहुसंस्कृतिवाद का भविष्य

समावेशी नीतियों का महत्व

समावेशी नीतियाँ लोकतांत्रिक समाजों में सभी नागरिकों के समान अधिकारों, अवसरों और न्याय को सुनिश्चित करने का महत्वपूर्ण माध्यम हैं। यह नीतियाँ समाज में विविधता को मान्यता देती हैं और विभिन्न धार्मिक, जातीय, सांस्कृतिक, और सामाजिक समूहों के बीच समानता की दिशा में काम करती हैं। समावेशी नीतियाँ विशेष रूप से उन समुदायों के लिए आवश्यक हैं जो ऐतिहासिक रूप से हाशिए पर रहे हैं और जिन्हें समाज में समान अधिकार प्राप्त नहीं हुए हैं।

समावेशी नीतियाँ न केवल समाज में समानता और न्याय का निर्माण करती हैं, बल्कि वे सामाजिक ध्रुवीकरण और असहमति को भी कम करती हैं। इसके तहत, सरकारें और संस्थाएँ सभी नागरिकों की जरूरतों और चिंताओं को समान रूप से स्वीकार करती हैं और उन पर ध्यान केंद्रित करती हैं, चाहे वह किसी विशेष जाति, धर्म, या लिंग से संबंधित हो। उदाहरण स्वरूप, भारत में आरक्षण नीति ने सामाजिक और

आर्थिक रूप से पिछड़े समुदायों को मुख्यधारा में लाने की दिशा में महत्वपूर्ण योगदान दिया है। इसके अलावा, समावेशी नीतियाँ शिक्षा, स्वास्थ्य, और रोजगार जैसे क्षेत्रों में समान अवसर प्रदान करने में भी महत्वपूर्ण भूमिका निभाती हैं (Singh, 2020)।

समावेशी नीतियाँ न केवल सामाजिक न्याय का कारण बनती हैं, बल्कि यह राष्ट्रीय एकता और शांति को भी बढ़ावा देती हैं। जब एक राष्ट्र अपने नागरिकों को समान अवसर और अधिकार प्रदान करता है, तो इससे विभिन्न समुदायों के बीच आपसी विश्वास और सहयोग बढ़ता है। समावेशी नीतियाँ यह सुनिश्चित करती हैं कि कोई भी समुदाय समाज की प्रगति से बाहर न रहे और सभी को समान रूप से फलने-फूलने का अवसर मिले।

बहुसंस्कृतिवाद को बढ़ावा देने के उपाय

बहुसंस्कृतिवाद एक ऐसा विचारधारात्मक दृष्टिकोण है जो विभिन्न संस्कृतियों, धर्मों, भाषाओं, और पहचानों के बीच समानता और सम्मान को बढ़ावा देता है। यह विचारधारा यह मानती है कि एक समाज में विभिन्न सांस्कृतिक और सामाजिक समूहों की विविधता को स्वीकार किया जाए और उन सभी को समान अधिकार दिए जाएं। बहुसंस्कृतिवाद को बढ़ावा देने के लिए कुछ प्रमुख उपायों की आवश्यकता है:

1. **शिक्षा और जागरूकता:**बहुसंस्कृतिवाद को बढ़ावा देने का सबसे प्रभावी तरीका शिक्षा के माध्यम से है। शिक्षा में सांस्कृतिक विविधता के महत्व को शामिल करना और बच्चों को छोटी उम्र से ही विभिन्न संस्कृतियों के बारे में जानकारी देना बहुत आवश्यक है। यह न केवल विभिन्न संस्कृतियों की समझ को बढ़ाता है, बल्कि सामाजिक सद्भाव को भी मजबूत करता है (Kumar, 2021)।

2. **संविधान और कानूनों में संरक्षण:**बहुसंस्कृतिवाद को कानूनी तौर पर समर्थन देने के लिए सरकारें ऐसी नीतियाँ और कानून बना सकती हैं जो विभिन्न सांस्कृतिक और धार्मिक समूहों को उनके अधिकारों का संरक्षण दें। भारत जैसे विविधता वाले देशों में, संविधान में ऐसे प्रावधान पहले से हैं जो नागरिकों को अपनी संस्कृति और धर्म को संरक्षित करने का अधिकार प्रदान करते हैं। इस प्रकार की कानूनी व्यवस्था बहुसंस्कृतिवाद को प्रोत्साहित करती है (Chaudhary, 2019)।

3. **सांस्कृतिक आदान-प्रदान और संवाद:**विभिन्न सांस्कृतिक समुदायों के बीच संवाद और आदान-प्रदान की प्रक्रिया को बढ़ावा देना बहुसंस्कृतिवाद के लिए आवश्यक है। सांस्कृतिक आयोजनों, कला, और साहित्य के माध्यम से विभिन्न समूहों के बीच समझ और सहयोग को बढ़ावा दिया जा सकता है। यह कदम न केवल सांस्कृतिक समझ को बढ़ाता है, बल्कि समाज के विभिन्न हिस्सों के बीच सहिष्णुता और सम्मान को भी बढ़ावा देता है।

4. **समाज में विविधता का सम्मान:**बहुसंस्कृतिवाद को बढ़ावा देने के लिए समाज को एक ऐसी संस्कृति विकसित करनी होगी जो विविधता का सम्मान करे। इसका मतलब है कि समाज में हर धर्म, जाति,

और संस्कृति के लोगों को समान रूप से स्वीकार किया जाए और किसी को भी हाशिए पर न डाला जाए। यह न केवल सामाजिक ध्रुवीकरण को कम करेगा, बल्कि विभिन्न समुदायों के बीच सहयोग और आपसी समझ भी बढ़ाएगा।

5. **राजनीतिक नेतृत्व का योगदान:**बहुसंस्कृतिवाद को प्रोत्साहित करने के लिए राजनीतिक नेताओं को एक सकारात्मक दृष्टिकोण अपनाना होगा, जिसमें वे सभी सांस्कृतिक और धार्मिक समूहों के हितों का समान रूप से सम्मान करें। यह नेताओं का कर्तव्य बनता है कि वे समाज में सहिष्णुता और समझ को बढ़ावा दें और किसी एक समूह को विशेष प्राथमिकता न दें (Patel & Sharma, 2020)।

समावेशी नीतियाँ और बहुसंस्कृतिवाद का भविष्य समाज की विकासशील स्थिति और विविधता की स्वीकृति पर निर्भर करता है। जब समाज अपने नागरिकों की विविधता को अपनाता है और सभी को समान अवसर प्रदान करता है, तो यह न केवल सामाजिक शांति का कारण बनता है, बल्कि यह राष्ट्र की प्रगति में भी सहायक होता है। इसलिए, समावेशी नीतियों का विस्तार और बहुसंस्कृतिवाद का समर्थन करना वैश्विक राजनीति और समाज के लिए अत्यंत महत्वपूर्ण है।

1.6 निष्कर्ष

राष्ट्रवाद और पहचान की राजनीति ने आधुनिक वैश्विक और राष्ट्रीय राजनीति में गहरे प्रभाव डाले हैं। 21वीं सदी में, जब वैश्वीकरण और डिजिटल युग ने समाजों को जोड़ने का प्रयास किया है, राष्ट्रवाद और पहचान आधारित राजनीति ने अलग-अलग रूपों में पुनः शक्ति प्राप्त की है। सांस्कृतिक, धार्मिक और आर्थिक राष्ट्रवाद जैसे विभिन्न स्वरूपों के माध्यम से पहचान की राजनीति ने समाज में ध्रुवीकरण और असहमति को जन्म दिया है। यह शोध दर्शाता है कि राष्ट्रवाद और पहचान की राजनीति समाज में न केवल राजनीतिक अस्थिरता का कारण बन सकती है, बल्कि यह बहुसंस्कृतिवाद और समानता के सिद्धांतों को चुनौती भी दे सकती है।

भारत में धार्मिक राष्ट्रवाद का उभार, ब्रेक्जिट, और अमेरिका की "अमेरिका फर्स्ट" नीति जैसे उदाहरण बताते हैं कि राष्ट्रवाद का चेहरा किस प्रकार बदल रहा है और यह वैश्विक सहयोग को चुनौती दे रहा है। हालांकि, समावेशी नीतियाँ और बहुसंस्कृतिवाद के उपाय इन चुनौतियों का समाधान प्रदान कर सकते हैं। इसके अलावा, विभिन्न सांस्कृतिक और धार्मिक पहचान को सम्मान देने के लिए संवेदनशील और समावेशी राजनीति की आवश्यकता है।

वर्तमान में राष्ट्रवाद का विकास न केवल एक राजनीतिक प्रवृत्ति के रूप में देखा जा सकता है, बल्कि यह सांस्कृतिक और सामाजिक संरचनाओं का भी हिस्सा बन चुका है। भविष्य में, यदि समावेशी नीतियाँ और बहुसंस्कृतिवाद को बढ़ावा दिया जाए, तो यह समाजों में शांति, सहयोग और विकास के नए रास्ते खोल सकता है।

संदर्भ

1. नैयर, आर. (2021). डिजिटली भारत और भारतीय लोकतंत्र पर इसका प्रभाव। *राजनीतिक अध्ययन पत्रिका*, 18(2), 134-148।
2. शर्मा, एस., और मेहता, ए. (2020). ग्रामीण भारत में डिजिटल साक्षरता: चुनौतियाँ और अवसर। *अंतर्राष्ट्रीय डिजिटल शासन पत्रिका*, 5(4), 50-65।
3. कुमार, पी. (2019). ई-गवर्नेंस और डिजिटल लोकतंत्र: भारत की पहलों का अवलोकन। *लोक प्रशासन पत्रिका*, 22(1), 85-99।
4. पटेल, डी., और शर्मा, आर. (2021). डिजिटल विभाजन और भारतीय चुनावों पर इसका प्रभाव। *चुनाव अध्ययन पत्रिका*, 34(3), 98-112।
5. सिंह, आर. (2020). डिजिटल युग में पारदर्शिता और जवाबदेही। *भारतीय राजनीतिक विज्ञान पत्रिका*, 59(2), 140-158।
6. शर्मा, ए., और गुप्ता, एस. (2021). भारत में भ्रष्टाचार विरोधी उपायों में डिजिटल प्रौद्योगिकियाँ: एक केस अध्ययन। *शासन और प्रौद्योगिकी पत्रिका*, 12(3), 232-245।
7. चक्रवर्ती, के. (2020). फेक न्यूज और लोकतंत्र के लिए डिजिटल खतरे। *डिजिटल लोकतंत्र समीक्षा*, 8(1), 54-70।
8. पटेल, एस., और सिंह, एम. (2021). डिजिटल शासन के युग में डेटा सुरक्षा और गोपनीयता कानून। *कानून और प्रौद्योगिकी पत्रिका*, 15(4), 201-220।
9. मेहता, एन. (2021). राजनीतिक प्रणालियों में डिजिटल प्रौद्योगिकी उपयोग के लिए नैतिक दिशानिर्देश। *राजनीतिक नैतिकता पत्रिका*, 23(2), 101-116।
10. चौधरी, पी. (2019). भारतीय चुनावों में डिजिटल लोकतंत्र और सोशल मीडिया। *राजनीतिक अध्ययन पत्रिका*, 45(3), 212-230।
11. कपूर, आर., और सिन्हा, टी. (2020). प्रौद्योगिकी और लोकतंत्र: अवसर और चुनौतियाँ। *अंतर्राष्ट्रीय राजनीतिक विज्ञान समीक्षा*, 58(4), 89-102।
12. मिश्रा, ए. (2021). डिजिटल विभाजन और लोकतंत्र: पुल बनाना। *भारतीय सामाजिक विज्ञान अनुसंधान पत्रिका*, 32(2), 67-82।
13. शर्मा, आर. (2020). भारतीय चुनावों में सोशल मीडिया: एक नया रणक्षेत्र। *भारतीय राजनीतिक विज्ञान पत्रिका*, 52(4), 213-229।

14. टेलर, एम. (2018). अमेरिकी राष्ट्रपति चुनावों में सोशल मीडिया की भूमिका। *लोकतंत्र और प्रौद्योगिकी पत्रिका*, 34(1), 45-60।

15. एलकोट, एच., और जेंट्जकोव, एम. (2017). 2016 चुनाव में सोशल मीडिया और फेक न्यूज। *आर्थिक दृष्टिकोण पत्रिका*, 31(2), 211-236।

16. कैडवैलड्र, सी. (2018). कैम्ब्रिज एनालिटिका फाइल्स। *द गार्डियन*।

17. कपूर, आर., और शर्मा, ए. (2021). कृत्रिम बुद्धिमत्ता और राजनीतिक अभियानों में इसकी भूमिका। *राजनीतिक प्रौद्योगिकी पत्रिका*, 12(3), 99-115।

18. सुंदर, वी. (2020). राजनीतिक संचार में कृत्रिम बुद्धिमत्ता: चुनौतियाँ और अवसर। *प्रौद्योगिकी और राजनीति पत्रिका*, 45(2), 56-72।

19. सिंह, पी. (2020). डिजिटल विभाजन और लोकतंत्र पर इसका प्रभाव। *अंतर्राष्ट्रीय सामाजिक विज्ञान और राजनीति पत्रिका*, 28(4), 213-230।

20. शर्मा, आर., और पटेल, के. (2021). डिजिटल पहुंच में शहरी-ग्रामीण विभाजन और लोकतांत्रिक भागीदारी पर इसका प्रभाव। *राजनीतिक समानता पत्रिका*, 34(5), 177-189।